सेंचुरी का श्रमिक संघर्ष और नेतागिरी

मेधा पाटकर

नर्मदा घाटी के 33 से अधिक साल लड़ते आए किसान-मजदूर जल, जंगल, जमीन पर अपना हक जताते रहे हैं। लेकिन खेती घाटे का सौदा होते हुए खेतिहरों के बेटे-बेटियों को क्षेत्र के या बाहर के भी उद्योगों में नौकरियां या मजदूरी के लिए भी बढ़ना पड़ा है। नर्मदा के पानी पर और किसानों की ही जमीनें अर्जित करते हुए जो जो उद्योग उभरते गये हैं, उन उद्योगों में हजारों-हजार घाटी के युवा कार्यरत हैं और उनके अनुभव, समस्याएं भी अब किसानी क्षेत्र में चर्चा का मुद्दा बन गया है।

रोजगार निर्माण भी तो राजनीतिक अजेंडा पर उतर आया हुआ एक संकट या चुनौती है ही! लेकिन रोजगार, आज का और कल का, इसके बीच की दूरी भी एक खाई बन गयी है। प्राकृतिक संसाधनों पर जीते आए, पीढ़ियों की परंपरा से स्वयं रोजगार पर निर्भर आदिवासी जैसे अन्य किसी भी उद्योगों में मजदूर बनने पर घुटन महसूस करते हैं, कहीं ईट की खदानें यार रेत के काम में सिलिकोसिस की बीमारी से मौत तक भुगतते हैं, वैसे ही कुछ फर्क के साथ, किसानों के बेटे भी मध्य प्रदेश के पीथमपुर नाम के औद्योगिक क्षेत्र की गलियों में, कल-कारखानों में, मशीनों की धड़धड़ाहट में जब आ पहुंचते हैं, तब उन्हें अपने हरे-भरे खेत, अपनी दाल बाटी ही क्या अपने गांव की नदी और खलिहान भी टूटते हुए दिखाई देते हैं। खेती और किसानी बचाकर, अपनी जड़ें गांव में बरकरार रखते हुए ये जब उद्योगनगरी में आकर पैसे की कमाई के लिए अपने श्रम, अपनी शिक्षा और कुशलता का निवेश करते हैं। इस नयी दुनिया में उन्हीं के सामने उद्योग क्षेत्र की कई ऐसी चुनौतियां खड़ी हो जाती है की किसानों के संघर्ष के अनुभवों या अनुभवी युवा भी मजबूर होते हैं, लड़ाई शुरू कर ही देते हैं।

आज 80 प्रतिशत ठेका मजदूरों के श्रम भी सस्ते में खरीदकर चल रही फैक्ट्रियों का रोजगार निर्माण का दावा और दिखावा

तो बना है ही, लेकिन नफाखोरी और पूंजीवाद के नए आयामों में फंसे ये बड़े उद्योगपति अपनी मनमानी के बल पर जिस प्रकार से कंपनियां खोलना और बंद करने का खेल चलाते हैं, यह अनुभव है सेंचुरी के श्रमिकों का! मुंबई में बड़ा नाम लेकर चली बिरला सेठ की सेंचुरी भी इन्होंने बंद की, जो कि मुंबई के ही 'गिरजी कामगारों' के संघर्ष का कारण बनी। वहां भी बहुतांश श्रमिकों को कुछ लाख रुपया वीआरएस के रूप में लेकर बोरया-बिस्तर बांध कर छुट्टी लेनी पड़ी। लेकिन कुछ 300 श्रमिकों ने लंबी, जीवट लड़ने से निवृत्ति के वर्ष तक, पूरी वेतन की राशि हासिल की! मिल्स बंद होकर भी सेठ को उनको बख्शीश देना पड़ा। साथ ही उनकी जमीन में, न केवल बिरला बल्कि हर पुराने मिल मालिकों को 1/3 हिस्से में श्रमिकों के लिए घर, यह हिसाब भी मंजूर करना पड़ा।

पिछले डेढ़ साल से अब चल रहा है मध्यप्रदेश में स्थित सेंचुरी की याने बिरला समूह की ही यार्न और डेनिम की उत्पादक, दो मिल्स के श्रमिक जारी रखे हैं अपना संघर्ष! हकीकत यह है कि सेंचुरी ने दोनों मिल्स बेचने का निर्णय लिया। करीबन दो-तीन सालों से सैकड़ों श्रमिकों को जबरन नौकरी से कुछ ना कुछ कारण देकर हटाना, मशीनरी में नहीं खरीदी टालना, उत्कृष्ट प्रति के उत्पादन को भी पुरे दाम की चिंता न करते हुए बेचना आदि हरकतों से ढलती गयी कमाई और इन दोनों बिलों पर कर्जबोझ ही नहीं हर महीना 3 करोड़ रुपये का घाटा छा गया। इस स्थिति में एक के बदले, एक के बाद एक, अलग अलग दौर में आए चार श्रमिक संगठनों ने अपना डेरा श्रमिकों में बनाया लेकिन अंधाधुंध व्यवहार कई बार आपस की मारपीट, गोलीबारी तक चलती रही आपसी मतभेद की कहानी।

यह मिल्स फिर भी बिरला की परंपरा का सुन्दर आविष्कार रही। कम वेतन पाने वाले श्रमिक, जिनमें से कई उत्तरप्रदेश, बिहार ही नहीं महाराष्ट्र के भी बिरला के प्रति संतुष्टि रखते हुए जी रहे थे, स्थानिक श्रमिकों के साथ नर्मदा घाटी के ही गांवों का हिस्सा होकर! अचानक खबर फैली की सेंचुरी बेची जाने की तैयारी में है। उसी दिन यानी 17 अगस्त 2017 के रोज सभी 930 श्रमिक ही नहीं 100 से अधिक कर्मचारी भी कंपनी के अंदर ही 'बैढा सत्याग्रह' शुरू करके जवाब मांगने लगे। कोलकाता की वेयरइट ग्लोबल कंपनी को सेंचुरी बेचने की चर्चा थी। श्रमिकों ने इसे विरोध जताया, वेयरइट की खरगोन या भोपाल जिले में बंद सी पड़ी मिल्स की हकीकत जानकर बिरला के जनरल मैनेजर सरदार जागीर सिंह ने शांतिपूर्णता से पेश आकर आखिर रात-बेरात समझौता हुआ; "अगर मिल्स बेची या लीज पर देना हुआ तो हम शासकीय नियम अनुसार वीआरएस याने नगद राशि देंगे!" श्रम पदाधिकारी, मैनेजर, तहसीलदार, पुलिस अधिकारी तक, सभी से हस्ताक्षर के साथ हुआ हस्ताक्षरी समझौता लेकर उठे श्रमिक एक प्रकार से खुश ही हुए थे। लेकिन 5 ही दिन बीते न बीते 22 अगस्त के ही रोज सेंचुरी वेयरइट के बीच बिक्री सौदा हो गया।

श्रमिकों ने श्रमिक संगठनों का, वेयरइट में कार्य स्वीकारने की सलाह नकारकर फैक्ट्रियों के बाहर निकलकर गेट पर धरना शुरू किया। 10 दिनों तक कंपनी से कोई जवाब ना पाने पर चिंतित होकर, श्रमिक संगठनों पर भी भरोसा खोने पर वे हमारे पास पहुंचे। नर्मदा के किसानों से घाटी में ही कार्यरत मजदूरों को भी जोड़ना वाजिब और जरूरी मानकर हमने उन्हें साथ लेकर ही मनायी 201। की 'काली दिवाली'। यह भी पाया कि उनके पास सेंचुरी वेयरइट के बीच का अनुबंध की प्रति भी नहीं है। यूनियन तथा श्रम आयुक्त ने भी कॉपी ना होने की बात कही तब हमने सोचा, कानूनी लड़न भी जरूरी होगी। अधिकृत माने युनियन्स को भी साथ लेकर लड़नी होगी। पहली ही जाहिर सभा में युनियन्स के प्रतिनिधियों ने आकर पूरा समर्थन और श्रमिकों के अधिकार होते हुए संघर्ष का निर्णय मंजूर किया। नर्मदा आंदोलन के अनुभव से हमने शर्त रखी, श्रमिकों के परिवारों की महिलाओं को आंदोलनों में जोडने की। 'सत्याग्रह आंदोलन' नाम देते हुए संघ या हड़ताल नहीं, यह स्पष्ट करते, ये सैकड़ों श्रमिक और महिलाओं ने सेंचुरी के मिल्स में ही काम दो, इस मांग के साथ जो संघर्ष शुरू किया, वह 515 दिन बाद आज भी जारी है। 'नर्मदा बचाओ आंदोलन', जन आंदोलनों के राष्ट्रीय समन्वय का हिस्सा बनकर लेकिन स्थानीय समिति के नेतृत्व में संगठित शक्ति और एकता का परिचय देते हुए।

लेकिन इस बीच बहुत सी घटनाएं, निर्णय, फैसले और बुनियादी सवाल खड़े हुए जिसपर गहरी सोच जरूरी है। सर्वप्रथम युनियन्स की शिकायत पर औद्योगिक न्यायाधिकरण में लगी रेफरेंस याचिका पर सुनवाई में उनके वकील के अलावा हमारे अधिवक्ता और स्वयं मैं बहस में शामिल हुई। मुंबई-इंदौर हाईवे पर स्थित इन उद्योगों के पास 83 एकड़ जमीन, 10 बिल्डिंग्स, मशीनरीज होकर उसकी कीमत मात्र 5 करोड़ रुपया बताना और 1000 रुपये के स्टाम्प पेपर पर बिक्री या हस्तांतरण फर्जी साबित हुआ और निरस्त भी होता।

कंपनियों ने कानूनी मैदान में और एक सवाल छिड़का दिया—श्रमिकों का आंदोलन ही अवैध होने का। लेकिन कानूनी आधार पर कंपनी हार गयी, न केवल न्यायाधिकरण में बल्कि अपील याचिका दाखिल करने के बाद, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में भी। न्यायाधिकरण याने ट्रिब्यूनल को कानूनी दांवपेच में यह भी मानना पड़ा कि अब मालिकों के बगैर ही सेंचुरी का फर्ज बनता है कि वह नियमित वेतन दे, श्रमिकों और कर्मचारियों को भी। आज भी मिल्स बंद है लेकिन वेतन क्या बोनस भी पाकर जारी है श्रमिकों का संघर्ष— विविध कार्यक्रमों, व राष्ट्रीय संघर्षों के साथ जुड़कर।

इस बीच अद्भुत यह हुआ कि बिरला सेंचुरी कंपनी ने श्रमिकों की अपूर्ण एकजुट मानकर युनियन्स के बगैर समझौते के लिए संवाद शुरू किया। उनके पदाधिकारियों के साथ संवाद में हमही ने, श्रमिकों का समझाकर, यूनियन्स को शामिल किया।

चुनावी बॉन्ड्स पर सुप्रीम कोर्ट ने मोदी सरकार को दिया तगड़ा झटका

बीजेपी को साल 2016-17 और 2017-18 में 997 करोड़ रुपये और 990 करोड़ रुपये दाम में मिले हैं। यह राशि कांग्रेस को इसी समय में मिले दान की राशि से 5 गुना ज्यादा है। चुनाव आयोग के वकील ने कहा है कि साल 2017-18 में बीजेपी को 520 इलेक्टॉरल बॉन्ड मिले, जिनकी कीमत 222 करोड़ रुपये है।

वरिष्ठ पत्रकार जेपी सिंह की रिपोर्ट

उच्चतम न्यायालय से मोदी सरकार को एक के बाद एक तगड़ा झटका मिल रहा है। इस बार झटका चुनावी बॉन्ड्स (इलेक्टोरल बॉन्ड) को लेकर उच्चतम न्यायालय ने दिया है। मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई जस्टिस दीपक गुप्ता और जस्टिस संजीव खन्ना की पीठ ने कहा कि सभी राजनीतिक दल 15 मई तक मिलने वाली डोनेशन की जानकारी 30 मई तक चुनाव आयोग को सीलबंद लिफाफे में सौंपें।

पीठ ने कहा कि चुनावी प्रक्रिया में पारदर्शिता के लिए यह जरूरी है कि चुनावी बॉन्ड्स के जरिए मिली डोनेशन का खुलासा किया जाए। मुख्य न्यायाधीश ने फैसला लिखते हुए कहा कि सभी राजनीतिक दलों को आज से लेकर 15 मई तक मिली डोनेशन की जानकारी आयोग को 30 मई तक सौंपनी होगी। इस डिटेल में उन्हें डोनेशन में मिली रकम का जिक्र करना होगा और उन खातों का ब्योरा भी देना होगा, जिनमें रकम ट्रांसफर की गई है। इससे पहले चुनाव तक हस्तक्षेप नहीं करने की केंद्र की याचिका को उच्चतम न्यायालय ने खारिज कर दिया था।

हालांकि चुनावी बॉन्ड्स पर मोदी सरकार ने कोर्ट में तर्क देते हुए कहा था कि भारतीय जनता पार्टी कहां से पैसा ला रही है, यह जानकर जनता क्या करेगी। मोदी सरकार की तरफ से अटॉर्नी जनरल केके वेणुगोपाल ने पक्ष रखते हुए कहा कि जनता को सिर्फ उम्मीदवार के बारे में जानने का हक है, उसे इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए कि राजनीतिक चंदा कहां कहां से आ रहा है।

मगर उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि याचिकाकर्ताओं और उत्तरदाताओं द्वारा परस्पर विरोधी वजनदार दावे किये गये हैं, जो चुनावी प्रक्रिया पर जबरदस्त असर डालते हैं, इसलिए इस मामले पर विस्तृत सुनवाई की आवश्यकता होगी। उच्चतम न्यायालय उचित समय पर इसकी सुनवाई करेगा।

इसके अलावा उच्चतम न्यायालय ने वित्त मंत्रालय को अप्रैल-मई में चुनावी बांड खरीदने की खिड़की को 10 दिन से घटाकर पांच दिन करने का भी निर्देश दिया है। इससे पहले पीठ ने कहा कि इस पर फैसला सुरक्षित रख लिया था।

केंद्र सरकार की तरफ से अटॉर्नी जनरल केके वेणुगोपाल ने कहा था कि चुनाव प्रक्रिया के दौरान चुनावी बांड के मुद्दे पर कोर्ट आदेश न दें। उन्होंने कहा था कि इलेक्टोरल बॉन्ड स्कीम के तहत चंदा देने वाले शख्स की पहचान इसलिए सार्वजनिक नहीं की जा सकती, क्योंकि दूसरी राजनीतिक पार्टियां जब सत्ता में आएंगी तो वो उस व्यक्ति को परेशान कर सकती हैं। केंद्र ने भी कोर्ट से अनुरोध करते हुए याचिका दायर कर कहा कि इस मामले में सुप्रीम कोर्ट को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। साथ ही कहा कि चुनावी प्रक्रिया जब पूरी कर ली जाए, तब इस पर फैसला सुनाया जाए। कोर्ट ने केंद्र सरकार की इस याचिका को खारिज कर दिया।

केंद्र सरकार की इस स्कीम के खिलाफ असोसिएशन ऑफ डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स नाम के एनजीओ ने जनहित याचिका दाखिल की है। एनजीओ का पक्ष सुप्रीम कोर्ट में सीनियर एडवोकेट प्रशांत भूषण रख रहे हैं। एनजीओ ने अपनी याचिका में इस स्कीम की वैधता को चुनौती देते हुए कहा था कि इस स्कीम पर रोक लगाई जानी चाहिए या फिर इसके तहत डोनर्स के नामों को सार्वजनिक किया जाना चाहिए। हालांकि एडीआर की इस दलील का विरोध करते हुए अटॉर्नी जनरल केके वेणुगोपाल ने कहा था कि इस स्कीम का उद्देश्य चुनावों के दौरान ब्लैक मनी के इस्तेमाल को रोकना है।

इसके पहले उच्चतम न्यायालय ने सुनवाई के समय टिप्पणी की थी कि अगर पारदर्शी पॉलिटिकल फंडिंग के लिए बनाए गए इलेक्टोरल बॉन्ड्स को खरीदने वालों की पहचान ही गुप्त रहे, तब सरकार की चुनावों में काले धन को रोकने की सारी कवायद व्यर्थ हो जाएगी। उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि अगर दानदाताओं की पहचान ही न हो तो चुनाव में काले धन पर लगाम की केंद्र की सारी कोशिशें व्यर्थ हैं।

चुनाव आयोग ने भी इलेक्टोरल बॉन्ड जैसी अज्ञात बैंकिंग व्यवस्था के जरिए राजनीतिक फंडिंग को लेकर संदेह जाहिर किए थे, लेकिन केंद्र सरकार ने इस दावे के साथ इस बॉन्ड की शुरुआत की थी कि इससे राजनीतिक फंडिंग में पारदर्शिता बढ़ेगी और साफ-सुथरा धन आएगा। चुनाव आयोग का इस योजना का विरोध कोई नया नहीं है।

2017 में जब इस योजना का पंजीकरण किया गया था, तब भी तत्कालीन चुनाव आयुक्त नसीम जैदी के तहत चुनाव आयोग ने विधि मंत्रालय को एक हलफनामे कहा था कि योजना पीछे धकेलने वाली थी।

गौरतलब है कि इलेक्टोरल बॉन्ड के खिलाफ चल रही सुनवाई के दौरान गुरुवार 11 अप्रैल को एक चौंकाने वाली जानकारी सामने आई। पता चला कि इलेक्टोरल बॉन्ड से कौन सी पार्टी कितना चंदा ले रही है, ये चुनाव आयोग को बताने के लिए बाध्य नहीं हैं। सुनवाई के दौरान कोर्ट ने सरकार से ये भी पूछा कि था कि क्या इस बॉन्ड से कालेधन की समस्या और नहीं बढ़ेगी?

जनप्रतिनिधित्व कानून 1951 के मुताबिक अब तक पार्टियों के लिए ये जरूरी था कि वो चुनाव आयोग को चंदे की पूरी जानकारी दें। इलेक्टोरल बॉन्ड लाते समय 2017 में इस कानून में संशोधन किया गया। संशोधन के बाद अब पार्टियां चुनाव आयोग को ये बताने के लिए तो बाध्य हैं कि कुल चंदा कितना मिला है, लेकिन इलेक्टोरल बॉन्ड के जरिए कितना चंदा मिला है, ये बताने के लिए बाध्य नहीं हैं।

क्या होते हैं इलेक्टोरल बॉन्ड?

ये एक प्रकार के प्रोमिसरी नोट हैं, यानी

ये धारक को उतना पैसा देने का वादा करते हैं। ये बॉन्ड सिर्फ और सिर्फ राजनीतिकपार्टियां ही भुना सकती हैं। ये बॉन्ड एक हजार, दस हजार, एक लाख, दस लाख और एक करोड़ की राशि में ही खरीदा जा सकता है। ये इलेक्टोरल बॉन्ड कोई भी स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की चुनिंदा शाखाओं से ले सकता है। ये बॉन्ड अकेले, समूह में, कंपनी या फर्म या हिंदू अनडिवाडेड फैमिली के नाम पर खरीदा जा सकता है।

ये बॉन्ड किसी भी राजनीतिक पार्टी को दिया जा सकता है। खरीदने के 15 दिनों के अंदर उस राजनीतिक पार्टी को उस बॉन्ड को भुनाना जरूरी होगा, वरना वो पैसा प्रधानमंत्री राहत कोष में चला जाएगा। चुनाव आयोग द्वारा रजिस्टर्ड पार्टियां जिन्होंने पिछले चुनाव में कम से कम एक फीसदी वोट हासिल किया है, वो ही इन इलेक्टोरल बॉन्ड के जरिए चंदा लेने की हकदार होती हैं। चुनाव आयोग ऐसी पार्टियों को एक वेरिफाइड अकाउंट खुलवाती है और इसी के जरिए इलेक्टोरल बॉन्ड खरीदे जा सकता है।

बीजेपी को मिली कांग्रेस से 5 गुना ज्यादा रकम

बीजेपी को साल 2016-17 और 2017-18 में 997 करोड़ रुपये और 990 करोड़ रुपये दाम में मिले हैं। यह राशि कांग्रेस को इसी समय में मिले दान की राशि से 5 गुना ज्यादा है। चुनाव आयोग के वकील ने कहा है कि साल 2017-18 में बीजेपी को 520 इलेक्टॉरल बॉन्ड मिले, जिनकी कीमत 222 करोड़ रुपये है, पार्टी ने इसमें से 511 इलेक्टॉरल बॉन्ड रिडीम किए, जिनकी कीमत 221 करोड़ रुपये है।